Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 4 | (October - December 2026)

हिमाचल प्रदेश में गोरखाओं का उद्भव एवं संघर्ष और प्रभाव का अध्ययन

रोहित शर्मा [1], डॉ. थुकतन नेगी [2]

[1] शोधार्थी, इतिहास विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश, सप्त-सिंधु परिसर-I, देहरा, जिला कांगड़ा, हि. प्र. – 177101

[2] सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश, सप्त-सिंधु परिसर-I, देहरा, जिला कांगड़ा, हि. प्र. – 177101

सारांश

गोरखाओं का उदय और उनके संघर्ष हिमाचल प्रदेश के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। 18वीं सदी के उत्तरार्ध और 19वीं सदी के पूर्वार्ध के दौरान, जो गोरखा विस्तार का काल था, गोरखा शक्ति का उद्भव नेपाल से हुआ और इसका प्रभाव कुमाऊँ, गढ़वाल तथा हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों तक फैल गया। इस प्रक्रिया के दौरान स्थानीय पहाड़ी रियासतों के साथ संघर्ष हुए, प्रशासनिक व्यवस्थाओं की स्थापना हुई और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन आए। गोरखाओं ने हिमाचल के कई क्षेत्रों में किलों का निर्माण किया और शासन की एक संगठित प्रणाली स्थापित करने का प्रयास किया, जिससे स्थानीय सत्ता संरचनाओं में बदलाव आए। हालाँकि, उनकी कठोर कराधान नीतियों और शासन शैली के कारण स्थानीय जनता में असंतोष भी उत्पन्न हुआ। यह शोध पत्र हिमाचल प्रदेश में गोरखाओं के उद्भव, उनके विस्तार, स्थानीय शक्तियों के साथ उनके संघर्षों, उनकी प्रशासनिक व्यवस्था और उनके प्रभाव का विश्लेषण करता है और इस शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

कूट शब्द: गोरखा, हिमाचल प्रदेश, गोरखा विस्तार, पहाड़ी रियासत के साथ संघर्ष, प्रभाव।

प्रस्तावना:

हिमाचल प्रदेश का इतिहास अनेक पहाड़ी रियासतों, स्थानीय शासकों तथा बाहरी शक्तियों के राजनीतिक संघर्षों और पारस्परिक संबंधों से निर्मित हुआ है। अठारहवीं शताब्दी में नेपाल के गोरखा राज्य का उदय हिमालयी राजनीति की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। गोरखा शक्ति के विस्तार की नींव पृथ्वीनारायण शाह ने रखी।[1] उन्होंने 1768 ई॰ में काठमांडू, अक्टूबर 1768 ई॰ में पाटन और नवंबर 1769 ई॰ में भक्तपुर जैसे प्रमुख राज्यों पर अधिकार स्थापित कर नेपाल के एकीकरण को निर्णायक दिशा प्रदान की। उनके द्वारा प्रतिपादित दिव्य उपदेश में राष्ट्रीय एकता, आत्मनिर्भरता तथा विदेशी शक्तियों के प्रभाव से सतर्क रहने पर विशेष बल दिया गया था। नेपाल के एकीकरण के पश्चात् गोरखा शासकों ने अपनी राजनीतिक और सैन्य शक्ति का विस्तार पश्चिमी हिमालय की ओर प्रारंभ किया।[2]

नेपाल के पश्चिमी विस्तार में बहादुर शाह की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। उनके नेतृत्व में गोरखा राज्य ने एक संगठित विस्तारवादी नीति अपनाई, जिसके अंतर्गत पश्चिमी नेपाल की चौबीसी रियासतों को अपने अधीन करने के बाद कुमाऊँ और गढ़वाल की ओर अभियान चलाए गए। सन् 1790 ई॰ में गोरखाओं ने कुमाऊँ पर विजय प्राप्त कर अल्मोड़ा पर अधिकार स्थापित किया।[3] इसके पश्चात् उन्होंने गढ़वाल की ओर विस्तार करने का प्रयास किया, किंतु स्थानीय शासकों के प्रतिरोध और नेपाल-तिब्बत संघर्ष में चीन के हस्तक्षेप के कारण इस अभियान को अस्थायी रूप

से रोकना पड़ा।[4] हालाँकि, बाद में गोरखाओं ने गढ़वाल पर अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित कर लिया और सन् 1803-1804 ई० के सैन्य अभियान में अमर सिंह थापा के नेतृत्व में वहाँ विजय प्राप्त की। इस प्रकार गोरखा राज्य का पश्चिमी विस्तार यमुना नदी तक पहुँच गया।[5]

गढ़वाल विजय के पश्चात् गोरखाओं की दृष्टि हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी रियासतों की ओर केंद्रित हुई। यहाँ की राजनीतिक परिस्थितियाँ, स्थानीय शासकों के आपसी संघर्ष तथा क्षेत्रीय सत्ता-संतुलन ने गोरखा विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। परिणामस्वरूप गोरखा सेना ने हिमाचल की विभिन्न रियासतों में हस्तक्षेप करते हुए अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारंभ किया। इस विस्तार ने न केवल क्षेत्र की राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि स्थानीय समाज, अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक जीवन पर भी व्यापक प्रभाव डाला। अतः हिमाचल प्रदेश में गोरखा विस्तार और उनके शासन के प्रभावों को समझना आवश्यक है।

गोरखाओं का हिमाचल प्रदेश की रियासतों के साथ संघर्ष

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हिमालयी क्षेत्र की राजनीति में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे। एक ओर कांगड़ा में राजा संसार चंद (1775-1823 ई०) कटोच शक्ति का विस्तार कर रहे थे, वहीं पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिख शक्ति उभर रही थी। इसी समय नेपाल के गोरखा शासक पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार करने में सक्रिय थे। कुमाऊँ में फरतियाल और मारा गुटों के मध्य उत्तराधिकार संबंधी संघर्ष ने गोरखों को हस्तक्षेप का अवसर प्रदान किया।[6] हरक देव जोशी के आमंत्रण पर नेपाल के शासक राणा बहादुर शाह (1778-1807 ई०) ने गोरखा सेना को कुमाऊँ की ओर भेजा, जिसके परिणामस्वरूप लगभग 1790 ई० में अल्मोड़ा पर गोरखों का अधिकार स्थापित हो गया। इसके पश्चात् 1792 ई० में गढ़वाल के राजा प्रद्युम्न शाह को 25,000 रुपये वार्षिक कर देने के लिए विवश किया गया।[7] अंततः 1803-04 ई० के संघर्ष में प्रद्युम्न शाह की मृत्यु के बाद गढ़वाल पर भी गोरखों का अधिकार स्थापित हो गया।[8]

इस राजनीतिक विस्तार के समानांतर सिरमौर राज्य भी आंतरिक संकट से गुजर रहा था। राजा कर्म प्रकाश (1793-1814 ई०) के शासनकाल में प्रशासनिक दुर्बलता, राजपरिवार के भीतर सत्ता संघर्ष तथा बाहरी हस्तक्षेप ने राज्य की स्थिति को अस्थिर बना दिया था।[9] इसी परिस्थिति का लाभ उठाकर हिंडूर (वर्तमान नालागढ़) के शासक रामशरण सिंह ने सिरमौर के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया।[10] उसने स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों और राजपरिवार के कुछ सदस्यों को राजा के विरुद्ध संगठित करने का प्रयास किया। इसी दौरान राजपरिवार के सदस्य कंवर किशन सिंह ने भी विद्रोह कर दिया और राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में लूटपाट तथा अशांति फैलने लगी। इसलिए इन घटनाओं को केवल राजपरिवार के आंतरिक संघर्ष के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि इन्हें उस व्यापक क्षेत्रीय सत्ता-संघर्ष के संदर्भ में समझना आवश्यक है, जिसमें कमजोर पहाड़ी रियासतें बाहरी शक्तियों के हस्तक्षेप के प्रति अधिक संवेदनशील हो रही थीं।[11]

राजा कर्म प्रकाश ने विद्रोह को नियंत्रित करने के लिए गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा से सहायता माँगी। इसके परिणामस्वरूप भक्ति सिंह थापा के नेतृत्व में लगभग 700 गोरखा सैनिक सिरमौर भेजे गए। किंतु मई 1804 ई० में जामटा के निकट किशन सिंह और हिंडूर के सैनिकों ने संयुक्त रूप से गोरखा दल को पराजित कर पीछे हटने के लिए विवश कर दिया।[12] इस घटना से स्पष्ट होता है कि गोरखा सैन्य शक्ति के विस्तार के बावजूद स्थानीय राजनीतिक शक्तियाँ उनके हस्तक्षेप का प्रतिरोध करने में सक्षम थीं। इसके बाद कर्म प्रकाश को नाहन छोड़कर क्यारदा दून क्षेत्र के कांगड़ा किले में शरण लेनी पड़ी। विद्रोहियों ने किले को घेर लिया और संघर्ष के दौरान राजा के निकट सहयोगी

मियाँ जवालू की मृत्यु हो गई। उसका चेहरा राजा से मिलता-जुलता होने के कारण विद्रोहियों ने उसे ही कर्म प्रकाश समझ लिया। इस भ्रम का लाभ उठाकर राजा रात्रि में अपनी रानी के साथ किले से निकल गया और टानूर गाँव के मुखिया झान्झू की सहायता से कालसी पहुँच गया।[13] दूसरी ओर, राजा की मृत्यु का समाचार फैलने पर विद्रोहियों ने उसके भाई रत्न सिंह को 'रत्न प्रकाश' की उपाधि देकर नया शासक घोषित कर दिया।

इसलिए इन घटनाओं का महत्त्व केवल सिरमौर के राजपरिवार में हुए उत्तराधिकार संघर्ष तक सीमित नहीं है। वस्तुतः सिरमौर की आंतरिक राजनीतिक दुर्बलता ने गोरखों के लिए हस्तक्षेप की संभावनाएँ उत्पन्न कीं, जबकि जामटा का संघर्ष यह दर्शाता है कि स्थानीय शक्तियाँ उनके प्रभाव को सहजता से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थीं। इस प्रकार गोरखा विस्तार को केवल सैन्य विजय की प्रक्रिया मानना उचित नहीं होगा; इसके पीछे हिमालयी रियासतों की आंतरिक कलह, उत्तराधिकार संबंधी विवाद और बदलते क्षेत्रीय शक्ति-संतुलन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। यही परिस्थितियाँ आगे चलकर सिरमौर सहित पश्चिमी हिमालय की राजनीति को प्रभावित करने वाली सिद्ध हुईं।[14]

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिमालयी रियासतों की आंतरिक राजनीतिक दुर्बलता ने गोरखा विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। सिरमौर में उत्तराधिकार संबंधी संघर्ष और कुंवर रतन प्रकाश की सत्ता प्राप्त करने की कोशिशों से उत्पन्न अस्थिरता का लाभ उठाते हुए गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा ने हस्तक्षेप किया। इसी समय हिंडूर (नालागढ़) के राजा रामशरण सिंह भी पड़ोसी रियासतों की कमजोरियों का लाभ उठाकर अपना प्रभुत्व बढ़ाने में लगे थे। कहलूर (बिलासपुर) में बारह ठकुराइयों के विद्रोह और राजा महानचंद की कमजोर राजनीतिक स्थिति ने इस संघर्ष को और जटिल बना दिया।[15] रामशरण सिंह ने संसार चंद के साथ गठबंधन करके कहलूर पर आक्रमण किया तथा बिलासपुर नगर को लूटा और फतेहपुर, बहादुरपुर एवं रतनपुर जैसे दुर्गों पर अधिकार कर लिया। विवश होकर महानचंद ने गोरखाओं से सहायता माँगी और शिवदत्त राय को अमर सिंह थापा के पास भेजा। गोरखाओं ने इस आमंत्रण को अपनी पश्चिमी विस्तार नीति के अनुकूल अवसर के रूप में स्वीकार किया। अक्टूबर 1804 ई० में अमर सिंह थापा ने यमुना पार करके हिंडूर की सेना को पराजित किया तथा रामगढ़ और नालागढ़ के दुर्गों पर अधिकार कर लिया।[16] राजा रामशरण सिंह को पलासी की ओर पीछे हटना पड़ा। दूसरी ओर, सिरमौर के राजा कर्म प्रकाश को उनके विरोधियों से मुक्त कराने के बाद भी गोरखाओं ने वास्तविक सत्ता अपने हाथों में रखी और उन्हें प्रभावहीन शासक बना दिया। इस प्रकार सिरमौर गोरखा अधीनता में आ गया, जबकि कहलूर में महानचंद को सीमित अधिकारों के साथ पुनः स्थापित किया गया। शिवदत्त राय को कहलूर में गोरखा हितों की निगरानी का दायित्व सौंपा गया।[17]

यहाँ यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि गोरखाओं का हस्तक्षेप केवल स्थानीय शासकों की सहायता तक सीमित नहीं था, बल्कि वे आपसी संघर्षों को अपने क्षेत्रीय विस्तार का माध्यम बना रहे थे। महानचंद द्वारा कांगड़ा और कहलूर के बीच बत्ती तालुका के विवाद में अमर सिंह थापा से हस्तक्षेप का अनुरोध इसी नीति को आगे बढ़ाने वाला कदम सिद्ध हुआ। इस हस्तक्षेप ने गोरखाओं को सतलुज पार करके कांगड़ा की राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया। वर्ष 1805 ई० के अंत में गोरखा सेना ने सतलुज पार किया, तो उस समय गोरखा सेनापति अमर सिंह के पास 40,000 गोरखा सैनिक और 10,000 अन्य स्थानीय सैनिक थे। इन सभी सैनिकों की सहायता से मई 1806 ई० में महलमोरियों के युद्ध में संसार चंद को पराजित कर दिया।[18] इस अभियान में चंबा के राजा जीत सिंह ने अपने वज़ीर नत्थू के नेतृत्व में सैनिक सहायता भेजी। पराजित संसार चंद को कांगड़ा दुर्ग में शरण लेनी पड़ी, जबकि गोरखा सेना नादौन तक पहुँच गई और उसने मंडी के बंदी राजा ईश्वरी सिंह को मुक्त कराकर पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इस विजय के बाद नूरपुर, चंबा, सुकेत, कुटलेहर और जसवां के शासकों ने ज्वालामुखी में एकत्र होकर गोरखाओं को

सहयोग देने का आश्वासन दिया। अमर सिंह थापा ने अपने भाई भक्ति सिंह थापा को सुजानपुर टिहरा की ओर भेजा और स्थानीय शासकों पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया।[19]

चंबा के राजा को लिखे गए उनके पत्रों में गोरखा प्रभुत्व की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। एक पत्र में उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि गोरखाओं का शत्रु चंबा का शत्रु और गोरखाओं का मित्र चंबा का मित्र होगा। इसी प्रकार दूसरे पत्र में चंबा से चार हजार रुपये की आर्थिक सहायता माँगने तथा त्रिगर्त के विरुद्ध सैनिक सहयोग जुटाने का उल्लेख मिलता है। इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि गोरखा संबंधों में समान राजनीतिक साझेदारी की अपेक्षा अधीनस्थ सहयोग की भावना अधिक प्रबल थी।[20] इस बीच अमर सिंह थापा ने संसार चंद के विरुद्ध कांगड़ा दुर्ग की घेराबंदी जारी रखी। मूरक्रॉफ्ट और विग्ने के विवरणों में घेराबंदी की अवधि को लेकर अंतर मिलता है, लेकिन सामान्यतः इसे लगभग चार वर्ष का संघर्ष माना जाता है।[21] लगातार युद्ध, रसद की कमी और कृषि व्यवस्था के विनाश से कांगड़ा घाटी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। इसी अवसर का लाभ उठाकर हिंडूर के राजा रामशरण सिंह ने पलासी से निकलकर अपने राज्य पर पुनः अधिकार स्थापित किया और गोरखा सेना की रसद आपूर्ति में बाधा उत्पन्न की। बारह ठकुराइयों ने भी गोरखाओं के विरुद्ध हिंडूर का साथ दिया तथा सिरमौर ने भी अपनी निष्ठा बदल ली।

परिणामस्वरूप अमर सिंह थापा की स्थिति कमजोर होने लगी। अंततः संसार चंद ने लाहौर के महाराजा रणजीत सिंह से सहायता माँगी। जून 1809 ई॰ में सिख सेना ने कांगड़ा की ओर प्रस्थान किया और 20 जुलाई 1809 ई॰ को ज्वालामुखी मंदिर में रणजीत सिंह तथा संसार चंद के बीच समझौता हुआ।[22] इसकी शर्तों के अनुसार संसार चंद ने कांगड़ा दुर्ग और उसके आसपास के 66 उपजाऊ गाँव रणजीत सिंह को सौंपना स्वीकार किया।[23] संयुक्त सिख-कटौच सैन्य दबाव के सामने गोरखाओं को पीछे हटना पड़ा और कांगड़ा दुर्ग सिखों के अधिकार में चला गया। इस घटना ने हिमालयी राजनीति में शक्ति-संतुलन को बदल दिया। संसार चंद को अपनी स्वतंत्रता और क्षेत्रीय प्रभुत्व की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी, जबकि गोरखाओं की कांगड़ा विजय की महत्त्वाकांक्षा अधूरी रह गई।

कांगड़ा अभियान में असफलता के बाद अमर सिंह थापा ने अपना ध्यान पुनः शिवालिक और मध्य हिमालय की रियासतों की ओर केंद्रित किया। हिंडूर द्वारा रसद मार्ग बाधित किए जाने और सिरमौर द्वारा कठिन समय में साथ छोड़ने से वे विशेष रूप से नाराज थे। उन्होंने हिंडूर और सिरमौर के विरुद्ध सैनिक अभियान चलाया। मोरनी पहाड़ियों तक पहुँचने पर राजा रामशरण सिंह को पलासी के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। अमर सिंह थापा ने अपने पुत्र रणजोर सिंह को सिरमौर का प्रशासनिक एवं सैन्य दायित्व सौंपकर नाहन पर आक्रमण करने भेजा। रणजोर सिंह ने नाहन पर अधिकार करने के बाद नगर में आग लगा दी, जिससे नगर को भारी क्षति पहुँची। इसके बाद उसने जैतक में एक दुर्ग का निर्माण करवाया और उसे अपना प्रमुख सैन्य ठिकाना बनाया। राजा कर्म प्रकाश को नाहन छोड़कर सुबाथू में शरण लेनी पड़ी, लेकिन वहाँ भी उन्हें अपेक्षित सहयोग नहीं मिला। सिरमौर के प्रतिनिधियों भिन्या मालदेव और नारायण सिंह से निराश होकर वे अंततः जगाधरी के बौरियन चले गए। उनकी पत्नी, जो गुलेर राजपरिवार से संबंधित थीं, ने उन्हें अंग्रेजों से सैन्य सहायता प्राप्त करने का सुझाव दिया।[24] दूसरी ओर, अमर सिंह थापा ने कुठाड़, महलोग और कुनिहार पर अधिकार स्थापित करते हुए अर्की की ओर प्रस्थान किया। कुठाड़ के ठाकुर विशनदास को उनके आयुर्वेदिक ज्ञान और गोरखा अधिकारियों से पूर्व परिचय के कारण अपेक्षाकृत कम प्रतिरोध का मार्ग अपनाने का अवसर मिला, जबकि अर्की के राजा जगत सिंह को राज्य छोड़कर हिंडूर में शरण लेनी पड़ी। वर्ष 1809 ई॰ में गोरखाओं ने अर्की पर अधिकार करके उसे अपना प्रमुख प्रशासनिक एवं सैनिक केंद्र बनाया।[25] इसके बाद उन्होंने 1810 ई॰ में जुब्बल और पुंडर की ओर अभियान चलाया, जबकि बलसन के ठाकुरों ने नगना दुर्ग की रक्षा करते हुए गोरखा आक्रमणों का तीन बार प्रतिरोध किया।[26]

गोरखा विस्तार से चिंतित होकर कोटगढ़, बलसन, ठियोग और अन्य छोटी रियासतों के शासकों ने बुशहर के राजा से सहायता माँगी। बुशहर के शासक ने लगभग दस हजार सैनिकों के साथ अपने वज़ीर को सहायता के लिए भेजा।[27] इसके प्रत्युत्तर में अमर सिंह थापा ने वर्ष 1811 ई० में सुबाथू से विशाल सेना लेकर प्रस्थान किया और नगना दुर्ग पर अधिकार करने के बाद सतलुज घाटी की ओर बढ़े। इस समय बुशहर के राजा उग्र सिंह की मृत्यु हो चुकी थी और उनका उत्तराधिकारी महेंद्र सिंह अल्पवयस्क था। गोरखाओं ने इस उत्तराधिकार संबंधी कमजोरी का लाभ उठाकर रामपुर पर अधिकार कर लिया।[28] बुशहर का वज़ीर राजमाता और बालक राजकुमार को लेकर दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में चला गया, जहाँ गोरखा सेना के लिए पीछा करना कठिन था। अमर सिंह थापा वर्ष 1812 ई० तक रामपुर में रहे और आसपास की रियासतों को नियंत्रित करने के लिए सैनिक टुकड़ियाँ भेजते रहे। दुर्गम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष प्रशासन स्थापित करने की कठिनाइयों को देखते हुए उन्होंने कुछ क्षेत्रों का शासन 12,000 रुपए वार्षिक कर के बदले राजकुमार को सौंप दिया।[29] इस प्रकार गोरखा प्रभाव सतलुज और यमुना के बीच स्थित अनेक पहाड़ी रियासतों से आगे बढ़कर मध्य हिमालय के विस्तृत भूभाग तक फैल गया।

इस प्रकार गोरखा विजय केवल उनकी सैन्य शक्ति का परिणाम नहीं थी, बल्कि पहाड़ी रियासतों के पारस्परिक संघर्ष, उत्तराधिकार संबंधी विवाद, सामंती विद्रोह और राजनीतिक एकता के अभाव ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्थानीय शासकों ने अपने तात्कालिक हितों की पूर्ति के लिए कभी गोरखाओं, कभी सिखों और बाद में अंग्रेजों का सहयोग प्राप्त किया। परिणामस्वरूप, हिमाचल की अनेक रियासतों की पारंपरिक स्वतंत्रता समाप्त होती गई और क्षेत्रीय राजनीति में बाहरी शक्तियों का प्रभाव बढ़ता गया। वर्ष 1814 ई० में आरंभ हुए आंग्ल-गोरखा युद्ध के दौरान रामशरण सिंह, सिरमौर सहित अनेक पहाड़ी शासकों ने गोरखा प्रभुत्व से मुक्ति पाने के उद्देश्य से अंग्रेजों का साथ दिया। 15 मई 1815 ई० के युद्ध में अंग्रेजी सेना ने गोरखाओं को निर्णायक रूप से पराजित किया। इसके बाद सगौली की संधि (4 मार्च 1816 ई०) के परिणामस्वरूप गोरखाओं को सतलुज के पश्चिम के अपने अधिकार-क्षेत्र छोड़ने पड़े।[30] अंग्रेजों ने कई पहाड़ी शासकों को उनके राज्य वापस सौंपे, लेकिन यह पुनर्स्थापना पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी; इन रियासतों को ब्रिटिश संरक्षण और सर्वोच्चता के अधीन कर दिया गया। इस प्रकार गोरखा विस्तार और उसके विरुद्ध हुए संघर्ष ने हिमाचल की राजनीतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया तथा आगे चलकर औपनिवेशिक काल में पहाड़ी रियासतों के पुनर्गठन और आधुनिक हिमाचल प्रदेश के राजनीतिक भूगोल के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार की।

हिमाचल प्रदेश पर गोरखा आक्रमण का प्रभाव

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में हिमाचल प्रदेश पर गोरखा आक्रमण इस क्षेत्र के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। काठमांडू घाटी में अपनी शक्ति मजबूत करने के बाद गोरखाओं ने पश्चिम की ओर विस्तार शुरू किया।[31] उनका उद्देश्य हिमालयी व्यापार मार्गों, उपजाऊ क्षेत्रों और राजस्व पर नियंत्रण स्थापित करना था। उस समय सिरमौर, सोलन, क्योंथल, कहलूर और सतलुज घाटी के अनेक छोटे-छोटे राज्य आपसी संघर्षों में उलझे हुए थे। उनमें राजनीतिक एकता और मजबूत सैन्य व्यवस्था का अभाव था। इसी कमजोरी का लाभ उठाकर गोरखाओं ने इन क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया।[32] गोरखा शासन के दौरान लोगों को अत्याचार, भारी करों और असुरक्षा का सामना करना पड़ा। खेती नष्ट हो गई, गाँवों की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई और लोग अत्यंत गरीबी में जीवन बिताने लगे। कई क्षेत्रों में घर जर्जर हो गए और लोगों को आवश्यक वस्तुओं तक का अभाव था। गोरखाओं के कठोर व्यवहार के कारण जनता में असंतोष और विद्रोही भावना बढ़ने लगी।[33]

इस समय की क्रूरता को दर्शाने वाली एक लोककथा अर्की के पास रहने वाले गोरखा पुजारी 'गुरुजी' से जुड़ी है। कहा जाता है कि वह ग्रामीणों पर अत्याचार करता था और स्वयं को उनकी किस्मत का मालिक समझता था। परेशान होकर गाँववालों ने एक योजना बनाई और एक व्यक्ति ने घी लाने के बहाने उसकी हत्या कर दी। हत्या के बाद उसका निडर व्यवहार यह दिखाता है कि गोरखा शासन के अंत तक लोगों के मन से भय काफी हद तक समाप्त हो चुका था।[34] गोरखा सेना ने अनुशासन, सहनशक्ति और पहाड़ी युद्धकला के बल पर पश्चिमी हिमालय के बड़े क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। जैतक, जतोग और मलौण जैसे किले उनके सैन्य प्रभुत्व के प्रतीक बने।[35] अनेक स्थानीय शासकों को पराजित कर करदाता बना दिया गया तथा उनकी वास्तविक शक्ति गोरखा अधिकारियों के हाथों में चली गई। इससे पारंपरिक शासन और संरक्षण-व्यवस्था कमजोर हुई तथा शासक वर्ग और किसानों में असंतोष बढ़ा। गोरखाओं ने जीते हुए क्षेत्रों में सूबेदारों या उमरावों के माध्यम से केंद्रीकृत प्रशासन स्थापित किया। उनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना और सैन्य शक्ति को बनाए रखना था।[36] किसानों, मंदिरों तथा स्थानीय सरदारों को मिलने वाली पारंपरिक रियायतें घटा दी गईं। कर वसूली में कठोर उपाय अपनाए जाते थे और असमर्थता की स्थिति में भूमि जब्त करना, जबरन श्रम तथा शारीरिक दंड जैसी सजाएँ दी जाती थीं। इसके कारण कई किसान गाँव छोड़कर जंगलों या पड़ोसी क्षेत्रों में चले गए, जिससे कृषि उत्पादन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई।[37]

गोरखा शासन का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। मंदिरों, धार्मिक संस्थानों और पारंपरिक भूमि-अनुदानों पर नियंत्रण बढ़ गया। किलों, सड़कों और सैन्य निर्माण के लिए स्थानीय लोगों से श्रम, पशु और रसद लिए जाते थे, जिससे ग्रामीण जनता पर अतिरिक्त बोझ पड़ा।[38] फिर भी, गोरखा शासन का प्रभाव पूरी तरह नकारात्मक नहीं था। इसने अनेक छोटी रियासतों को एक केंद्रीय सत्ता के अधीन लाकर अस्थायी राजनीतिक एकता और प्रशासनिक समानता स्थापित की। इसलिए गोरखा शासन को एक ओर आर्थिक शोषण और सामाजिक असंतोष के रूप में, तो दूसरी ओर राजनीतिक एकीकरण और सैन्य विकास के महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में समझना चाहिए।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि हिमाचल प्रदेश में गोरखाओं का आगमन उनकी साम्राज्यवादी विस्तार नीति तथा स्थानीय पहाड़ी शासकों के निमंत्रण का परिणाम था। कुमाऊँ और गढ़वाल पर अधिकार करने के बाद उन्होंने सतलुज पार कर सिरमौर, कांगड़ा तथा अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया। अमर सिंह थापा के नेतृत्व में गोरखाओं ने 1803-04 ई० में सिरमौर में प्रवेश किया और बाद में कांगड़ा की ओर बढ़े। महलमोरियों के युद्ध में संसार चंद की पराजय के पश्चात् उसने महाराजा रणजीत सिंह से सहायता माँगी। रणजीत सिंह और संसार चंद की संयुक्त सेना ने गोरखाओं को पराजित किया, किंतु रणजीत सिंह के लौटने के बाद गोरखाओं ने पुनः कई क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। गोरखा शासन के दौरान अनेक किलों का निर्माण, संरक्षण और सुदृढ़ीकरण किया गया, जिससे उनकी सैन्य एवं राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा स्पष्ट होती है। प्रारंभ में स्थानीय शासकों और जनता को आशा थी कि गोरखा उनके प्रदेशों को संसार चंद के नियंत्रण से मुक्त कराकर उन्हें वापस सौंपेंगे, परंतु गोरखाओं ने स्वयं वहाँ शासन स्थापित कर लिया। भारी कर, कृषि उपज की क्षति, पशुओं और संपत्ति की जब्ती तथा अन्य कठोर नीतियों के कारण जनता में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे यही असंतोष स्थानीय शासकों और जनता को अंग्रेजों के निकट ले गया। इस प्रकार गोरखा शासन की दमनकारी नीतियाँ तथा स्थानीय शक्तियों द्वारा अंग्रेजों को दिया गया सहयोग एंग्लो-गोरखा युद्ध (1814-1816 ई०) की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले प्रमुख कारण सिद्ध हुए।

संदर्भ सूची

1. Ahluwalia, M. S. (1998). *Social, cultural, and economic history of Himachal Pradesh.* Indus Publishing, P. 154.
2. Pradhan, K. L. (1991). *The Gorkha Conquests: The Process and Consequences of the Unification of Nepal.* Calcutta: Oxford University Press, p. 25.
3. Ahluwalia, M. S. (1998). *Social, cultural, and economic history of Himachal Pradesh.* Indus Publishing.
4. Rose, L. E. (1971). *Nepal Strategy for survival.* University of California Press, Berkeley, Los Angeles, London, p. 50-75.
5. Hutchison, J., & Vogel, J. P. (1933). *History of the Panjab Hill States (Vol. I).* Calcutta: Government of India Press, p. 80.
6. Stiller, L. F. (1973). *The Rise of the House of Gorkha.* Kathmandu: Ratna Pustak Bhandar.
7. सिंह, मियां गोवर्धन. (2014). *हिमाचल प्रदेश इतिहास संस्कृति एवं आर्थिक परिवेश*, माल रोड़ शिमला, मिनर्वा बुक हाउस 46, पृष्ठ 124।
8. वही, पृष्ठ 124।
9. Singh, Rughanth Mian. (1904). *TWARIKH RAJGAN-E-PATHANIA-E-NURPUR, ZILA KANGRA (History of Pathania Raja of Nurpur, Distric Kangra),* Department of Language and Culture, Himachal Pardesh, p. 73.
10. सिंह, मियां गोवर्धन. (2020). *हिमाचल प्रदेश का इतिहास*, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, पृष्ठ 304।
11. Negi, T. S. (1969). *Sirmaur state gazetteer.* Oriental Printing Press, p. 57-58.
12. Pemble, J. (1971). *The Invasion of Nepal:* John Company at War. Oxford: Oxford University Press, p. 22.
13. सिंह, कंवर रणजोर. (2007). *सिरमौर रियासत का इतिहास;* हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, पृष्ठ 224-225।
14. वही, पृष्ठ 225।
15. सिंह, मियां गोवर्धन. (2014). *हिमाचल प्रदेश इतिहास संस्कृति एवं आर्थिक परिवेश*, माल रोड़ शिमला, मिनर्वा बुक हाउस 46, पृष्ठ 124।

16. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 238।
17. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 238।
18. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 238।
19. शर्मा, रूप राम. (2000). *हिमाचल प्रदेश अंधकार से प्रकाश की ओर:* लोअर बज्जार बलद्वार मंडी, करण प्रकाशन, पृष्ठ 521।
20. Chamba State Archive; Acc. No. 08.128.12
21. Moorcroft, W. & Trebeck, G. (1843). *Travels In the Himalayan Provinces of Hindustan and the Panjab (vol. 1),* Published under the Authority of the Asiatic Society of Calcutta, p. 128.
22. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 240।
23. सेमवाल, पी. एन. (1983). *पशिचमी हिमालय क्षेत्र के अतीत की झांकी,* सन्मार्ग प्रकाशन 16, यु. बी. बैंग्लों रोड़, दिल्ली, पृष्ठ 107।
24. सिंह, कंवर रणजोर. (2007). *सिरमौर रियासत का इतिहास;* हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, पृष्ठ 227।
25. Punjab Government. (1935). Gazetteers of the Simla Hill States (Vol. VIII, Part A). Lahore: Superintendent, Government Printing, p. 2.
26. सिंह, मियां गोवर्धन. (2020). *हिमाचल प्रदेश का इतिहास,* हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, पृष्ठ 209।
27. वही, पृष्ठ 209।
28. Punjab Government. (1911). Punjab States Gazetteer (Vol. VIII, Simla Hill States). Lahore, India: Government Printing Press, p. 7.
29. Walter Hamilton. (1820*). A geographical, statistical and historical description of Hindustan and the adjacent countries (Vol. I).* London, England: John Murray, p. 610.
30. Hamilton, F. (1819). *An account of the kingdom of Nepal.* Edinburgh: Constable.
31. Fraser, J. B. (1820). *Journal of a tour through part of the snowy range of the Himalaya mountains, and to the sources of the rivers Jumna and Ganges,* London: Rodwell and Martin, p. 13-17.
32. Ibid., p. 27-37.

33. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 250।

34. ठाकुर, नेम चन्द. (2024). *सोलन-सिरमौर ऐतिहासिक परिदृश्य:* दिल्ली, अनंग प्रकाशन, पृष्ठ 251।

35. Stiller, Ludwig F. (1973). *The Rise of the House of Gorkha: A Study in the Unification of Nepal, 1768-1816.* Kathmandu: Ratna Pustak Bhandar, p. 197-201.

36. Ibid., p. 215-216.

37. Kumar, Udhab Singh. (1903). *The Gurkha Conquest of Arki,* Punjab Printing Works-Lahore.

38. साक्षात्कार, (2026). रूप राम मेहता जी, उम्र 60, ग्राम रोहड़ू, तहसील रोहड़ू, जिला शिमला।